International Journal of Multidisciplinary Trends

E-ISSN: 2709-9369
P-ISSN: 2709-9350
www.multisubjectjournal.com
IJMT 2019; 1(1): 133-137
Received: 18-04-2019
Accepted: 23-05-2019

डॉ. हरिशंकर प्रजापति
सहा. आचार्य हिन्दी,
राजकीय शास्त्री संस्कृत महाविद्यालय महापुरा,
राजस्थान भारत

Corresponding Author:
डॉ. हरिशंकर प्रजापति
सहा. आचार्य हिन्दी,
राजकीय शास्त्री संस्कृत महाविद्यालय महापुरा,
राजस्थान भारत

हिन्दी आत्मकथाओं में लेखिकाओं की पुरुषों के प्रति मानसिकता

डॉ. हरिशंकर प्रजापति

सारांश:
आधुनिक हिन्दी साहित्य में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद नाटकए निबंध, कहानी और उपन्यासों में तो विकास की प्रक्रिया स्पष्ट रूप से दिखती है, लेकिन आत्मकथा एक ऐसी विधा है जो सत्य और यथार्थ के धरातल पर आधारित होती है। यह लेखक के व्यक्तिगत जीवन के अनुभवों की वास्तविक अभिव्यक्ति है। जीवनी और आत्मकथा में मुख्य अंतर यह है कि जीवनी किसी महान व्यक्ति के जीवन के उज्ज्वल पक्ष को दर्शाती है, जबकि आत्मकथा स्वयं लेखक के जीवन के संघर्षों, दुखों और अनुभवों का पर्दाफाश करती है।
प्राचीन काल से महिलाओं को शारीरिक और मानसिक रूप से अधीन समझा गया, और उन्हें सामाजिक, कानूनी और धार्मिक अधिकारों से वंचित किया गया। 1848 में स्त्रीवादी आंदोलन ने नए रूप में उभार लिया, जिसने महिलाओं के अधिकारों के लिए आवाज उठाई और समाज में महिलाओं की स्थिति में सुधार की दिशा में काम किया। इस पृष्ठभूमि में कई महिलाओं की आत्मकथाएँ सामने आईं, जिनमें उन्होंने पुरुषवादी समाज और पारंपरिक सामाजिक संरचनाओं का विरोध किया और अपने जीवन के संघर्षों को व्यक्त किया।
कुसुम असंल, कृष्णा अग्निहोत्री, मन्नू भंडारी, प्रभा खेतान, मैत्रेयी पुष्पा, और सुशीला टाकभौरे जैसी लेखिकाओं की आत्मकथाएँ पुरुषवादी मानसिकताए जातिवाद और महिलाओं के प्रति सामाजिक भेदभाव के खिलाफ एक महत्वपूर्ण दस्तावेज़ हैं। इन लेखिकाओं ने न केवल अपने व्यक्तिगत संघर्षों को उजागर किया, बल्कि समाज में स्त्री के स्थान को लेकर एक नई सोच को जन्म दिया। इन आत्मकथाओं में स्त्रीण्चेतनाए अस्मिता और सामाजिक न्याय की बात की गई है, जो स्त्री मुक्ति के आंदोलन की दिशा में मील का पत्थर साबित हुई हैं।

कुटशब्दः आत्मकथा, स्त्रीवाद, पितृसत्ता, हिन्दी साहित्य, महिलाओं का संघर्ष, सामाजिक समानताए महिला चेतना

प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य की आधुनिक गद्य विधाओं में (काव्य के अतिरिक्त) नाटक, निबन्ध, कहानी व उपन्यासों में तो स्वातन्त्रयोत्तर विकास क्रम का उल्लेख सर्वत्र मिलता है किन्तु आत्मकथा ऐसी विधा है, जो लगभग जीवनी के सदृश्य मानसिक या काल्पनिक न होकर सत्य के यथार्थ धरातल पर लिखी जाने वाली सशक्त रचना है।

इसमें वैयक्तिक जीवन की विशिष्ट अनुभूतियों का मक्कड़ जाल उलझा हुआ होता है जिसे धीरे-धीरे सामने आने का अवसर मिलता है। अनूदित व अन्य भाषाओं में लिखित आत्मकथ्य में वैसे तो कोई भिन्नता नहीं होती किन्तु थोडा बहुत ध्यान रखना आवश्यक है। जीवनी में और आत्मकथा में तात्विक भेद इतना ही होता है कि वह महान व्यक्ति के जीवन के उज्ज्वल पक्ष को लेकर लिखी जाती है व लेखक दूसरा होता है लेकिन आत्मकथा स्वयं की होती है।

सदियों पूर्व से ही क़ानून व धर्मशास्त्र दोनों में नारी को परतन्त्रता सहनी पड़ती थी। पुरुषों की तुलना में शारीरिक और बौद्धिक रूप से हीन माना जाता था। सम्पत्ति रखने और व्यवसाय करने की सुविधा की तो बात छोड़े अपनी सन्तान पर ही उसका अधिकार नहीं था। सन् 1848 में इन्हीं तथ्यों से जुड़कर स्त्रीवादी आन्दोलन ने नया उन्मेष किया तथा आन्दोलन ने नया रूप ग्रहण कर लिया।

तभी पहली बार पुरुषवादी वर्ग के समक्ष मत पत्र (मतदान) शैक्षणिक कार्य, मजदूरी, कमाने, मुआवजा आदि की समानता की आवाज उठाई, जो धीरे-धीरे आन्दोलन का रूप लेकर सम्पूर्ण यूरोप में फैल गई।" भारतीय स्वाधीनता आंदोलन से प्रेरित मानवता का संदेश धीरे-धीरे समाज विचारकों ने स्त्रीवादी नीतियों का आधार बनाकर स्त्री- चेतना को नवीन राह दिखाई।

एशिया में उन्नीसवीं और 20वीं सदी में विदेशी शासन व सामंती पुरुषवादी निरंकुशता के विरूद्ध लोग खड़े हो गये। जिससे स्त्रीवादी धारणा ताकतवर हो गई। दासता से मुक्ति के लिए तथा पुरुषवादी व्यवस्था के विरुद्ध आवाज उठाकर स्त्री ने मुकाबला करने की ठान ली। विधवा विवाह, पुनर्विवाह, सतीप्रथा, व पर्दा प्रथा पर रोक तथा पुरुषवादी सामंती परिवेश से पीड़ित होकर अमानुषिकतापूर्ण बर्बर व्यवहार से पीड़ित नारी की मनोदशा को आत्मकथाओं मे प्रकट किया गया है। कुसुम असंल ने जीवन की घटित घटनाओं का कच्चा चिट्ठा खोला है। लेखिका को पति, पुत्र, परिवार व रिश्तेदारों से भी सहायता नहीं मिली तथा वह आत्मसंघर्ष करती रही। "भयानक अकेलापन मेरी साधना में मेरे साथ था - अकेली चली उस राह पर।"[1] अरविन्द जैन ने इसे हिन्दी साहित्य में किसी भी लेखिका द्वारा प्रकाशित पहली आत्मकथा कहा है।" [2] अमीर लड़की की मध्यमवर्गीय परिवार के लड़के की दूरी जंगल के समान थी। कोरा भावविहीन वह पत्र मुझे एक परिहास लगा, मेरी कोमल भावनाओं को चकनाचूर करने वाला एक दस्तावेज।"[3]

चन्द्र किरण सौनरेक्सा ने पितृसत्तात्मक पुरुषवादी प्रवृत्तियों व स्त्री के प्रति मानसिकता को उजागर किया है। पिता की और से लाड प्यार खूब मिला और अपने बापूजी जैसा सन्तान वत्सल पिता अपनी इतनी लम्बी जिन्दगी में नहीं देखा। "उस जमाने में चाहे लड़के हों या लड़कियाँ बाप से बस डरना भर जानते थे। साथ बैठकर खेलना, बीमारी में सेवा करना, माँ की प्रताड़ना से बचाना ये सब उस समय आम बातें नहीं थी और मुझ पर तो बापूजी की विशेष छत्र छाया रहती थी।"[4] चन्द्रा ने आध्यात्मिक विचारों की प्रतिपुष्टि तथा रामचरितमानस, महाभारत एवं कबीर की साखी, शब्द और रमैनी (बीजक) की चर्चा भी की है। उन्होने जीवन में इन धार्मिक ग्रन्थो से सीखने का प्रयास किया जिससे उनके मन में आध्यात्मिकता भाव उत्पन्न हुआ। पिता के प्रति चन्द्रा की श्रद्धा अटूट थी। वे पितृसत्तात्मकता की भी पक्षधर रही है तथा पुरुष के प्रति संवेदना सापेक्ष है। यहाँ पिता ने विवाह से पूर्व सगाई जल्दबाजी के कारण तोड़ दी यहाँ लड़कों वालों के कारण ऐसा हुआ। हरिवंश राय बच्चन (अभिताभ बच्चपन के पिता) पति बनते-बनते रह गये। चन्द्रकिरण की मानसिकता पुरुषों के प्रति सकरात्मकता का

परिचय देती है। पति की शंकालु प्रवृत्ति की चर्चा की है।

कृष्णा अग्निहोत्री ने 'लगता नहीं दिल मेरा' शीर्षक आत्मकथा में पुरुष निर्मित पितृसत्तात्मक नैतिक प्रतिमानों की धज्जियों उखाडकर रख दी हैं। लिंग भेद का खुला विरोध कर समाज की भेद-भाव वाली नीति तथा पुरुषवादी समाज की संकुचित धारणा को दूर करने का सार्थक प्रयत्न किया। दम घोंटू दबाव में जीवन जीने, पुत्री होने पर पिता का मुहँ उतर जाना आदि। "किसी को यह चिन्ता नहीं थी कि मैं क्या चाहती हूँ ? मुझे क्या अच्छा लगता है। क्या बुरा लगता है। मैं क्या सोचती हूँ ?"[5] कृष्णा अग्निहोत्री ने पुरुष की स्त्रियों के प्रति कामेच्छा की कुत्सित भावना को कुण्ठित भाव-भूमि से अभिप्रेत बताया है। "आज सोचती हूँ कि लड़की का कोमल भोला बचपन भी क्या पुरुष से सहन नहीं होता है। वह उसे भी अपने गन्दे सुख हेतु चीर देने को आतुर रहता है।"[6] पुरुष मानसिकता का उदाहरण देखें "बचपन से ही सौन्दर्य, की चर्चाएँ होने लगी। तिवारी जी तुम्हारी बेटी तो सेव जैसे रंग की है, एकदम कश्मीरी सेब। भई बहुत सुन्दर है बिटिया।"[7] लेखिका ने ज्योतिष पर प्रारम्भ में विश्वास नहीं किया किन्तु जब सत्य घटित हुआ तो स्तब्ध रह गई। लेखिका को पति सुख नहीं मिला। अतः कृष्णा जी ने कटु यथार्थ को प्रकट किया है तथा पुरुषों के प्रति उनकी मानसिकता पति के विरोध के रूप में प्रकट हुई है।

लेखिका का ससुराल पक्ष सम्पन्न होने पर भी पुरुष की सामंती तानाशाही प्रवृति अर्थात् पति द्वारा पत्नी को प्रताडित और वह भी पति जो आई.पी.एस अधिकारी है के द्वारा विदुषी शिक्षित महिला के प्रति सोच मनुवादी धारणा को प्रकट करती प्रतीत होती है। श्रीकांत योगी मजिस्ट्रेट के जाल में फंस जाती है। विद्यार्थियों की नजदीकी के कारण अफवाहों की शिकार स्त्री की दशा भी उल्लेखनीय है अफवाहों का चक्र कभी-कभी निर्दोषता सिद्ध नहीं कर पाता, जितना में स्पष्टीकरण नीति अपनाती उतना ही वे सब मजा लेकर हसंते मुझे यह सब सहना पड़ता। यहाँ लेखिका की आंतारिक वेदना उजागर हुई है।

पुरुष प्रधान समाज में पुरुष नारी को अपमानित, प्रताड़ित करे तो आश्चर्य की बात नहीं लेकिन जब नारी ही नारी के प्रति अनुदार होकर अन्याय करने लगे तो इसे क्या कहा जाये ? कर्म निष्ठा के बावजूद प्राचार्य से कभी सहानुभूति के शब्द प्राप्त नही हुए। सगे भाई ने सहयोग की अपेक्षा गालियाँ देकर घर से बाहर निकाल दिया। ऐसी तुच्छ मानसिकता ने ही तो पुरूष के प्रति महिला वर्ग को हेय दृष्टि अपनाने को विवश किया है।

मन्नू भण्डारी ने पुरुषवादी मानसिकता का विरोध किया। पिता के विरोध करने पर भी हंस के सम्पादक राजेन्द्र यादव से विवाह (प्रेम) किया। पुरुषवादी धारणा का उदाहरण धर्मवीर भारती का चिट्ठा खोलकर प्रकट किया है। लेखिका पिता के रूखे व्यवहार का परिचय देती है। अजमेर का ब्रह्मपुरी मौहल्ला उनके जीवन का एक हिस्सा बन गया। अपनी हीन भावना का उत्तरदायित्व अपने पिता पर देती है। "मैं काली हूँ। बचपन में दुबली और मरियल थी। गोरा रंग पिताजी की कमजोरी थी। सो बचपन में मुझसे दो साल बड़ी खूब गोरी स्वस्थ और हंसमुख बहिन सुशीला से हर बात में तुलना और फिर उसकी प्रशंसा ने ही क्या मेरे भीतर ऐने गहरे हीन भाव की ग्रंथि पैदा कर दी कि नाम सम्मान और प्रतिष्ठा पाने के बावजूद आज तक मैं उससे उभर नहीं पाई। "[8] लेखिका की दृष्टि में पुरुष कितना स्वार्थी होता है, जो स्त्री साथी के लिए सब कुछ परित्याग कर एक ही मिनट में उसे सब कुछ सौंप देती है, उसकी अधीनता स्वीकार कर लेती है, वहीं उसकी सोच स्त्री के प्रति अपना रूख बदल लेती है, क्यों? कैसे होता है ? अतः मन्नू जी की पुरुषवादी

सामंती सोच पर प्रश्नचिह्न खड़ा करती कि मनुवादी पुरुष आज भी स्त्रीवादी नहीं, बल्कि वह पूर्णतया तानाशाह है।

उपन्यासकार प्रभा खेतान ने पुरुषवादी सत्ता का पक्ष लिया है स्त्री की अपेक्षा पुरुष की सराहना की है। पिता की देखभाल करने वाले आई स्पेशलिस्ट से प्रेम विवाह करती है। लेखिका कह देती है कि "डाक्टर साहब मेरे लिए रुग्णता के प्रतीक थे। मानो उनके लिए मैं जिन्दा थी. उनको कुछ हो जाये, ऐसा मैं सोच भी नहीं पाती। डाक्टर साहब मेरे लिए बरगद की छाँव थे।"[9]

प्रभा जी डाक्टर साहब के संकोची स्वभाव को जानते हुए भी अपने उज्ज्वल स्वप्नों को नहीं रोकने वाली थी। उस सपने में में एक सबल और सशक्त महिला थी। इस समाज में मेरी एक ऊँची हैसियत थी। लेकिन यह सपना सच कैसे हो? मेरी जिन्दगी तो मानो कहीं गिरवी है। जिन्दगी पर मेरा कोई नियन्त्रण नहीं। "[10] स्त्री अस्मिता यदा-कदा जागती है किन्तु गम्भीर चिंतन एक निश्चित आयाम देता है, किन्तु शीघ्र निर्णय कष्टदायी होता है। डॉ. सर्राफ से प्रेम करना अविवाहित (रखेल) बनकर रहना राजस्थानी लोक संस्कृति (मारवाडी क्षेत्र) में स्त्री होने के कारण 'इस औरत को हम मंच पर कैसे बैठाएँ ? माना किं पढ़ी लिखी आत्मनिर्भर स्त्री है पर ऐसी स्त्री समाज की नाक नहीं बन सकती।"[11]

मैत्रेयी पुष्पा ने पुरुष की तुच्छ सोच, घृणित कार्यों तथा वर्ग विषमता एवं स्त्री के प्रति होने वाले अनुचित व्यवहार को भोगा है। गृहस्थ जीवन के प्रति वितृष्णा और अलगाव की स्थिति सुस्पष्ट होती है। कस्तूरी ने मनुवादी सामंती पुरुष की खपच्ची उड़ा दी है, किन्तु उनकी माता ने एक पिता की तरह मैत्रेयी के उज्ज्वल भविष्य में आने वाली दुविधा को दूर करने में तथा परिवेश गत चुनौतियों का सामना करने में पूर्णतया सहयोग किया है।

लेखिका को पिता की कमी नहीं खलने दी। कस्तूरी ने जीवन की गहराई को जाचों, परखा और भोगा है। बेटी को सलाह देती है "स्त्रीत्व माने स्त्री शक्ति। तु उस स्त्री शक्ति को गँवाने पर तुली है, मुसीबत तो यही है। "कस्तूरी की राय में बेटी को गाय की तरह व्याहकर हॉक देने जैसा कोई दूसरा अपराध नहीं है। लेकिन उल्टी गंगा तो देखो कि उन्ही की बेटी आगे की ओर नही पीछे की ओर चल रही है। क्या इसीलिए था उसका संघर्ष।"[12] मैत्रेयी दिखावटी ढोंग पाखंड सामाजिक रीति-रिवाजों से परे स्वतन्त्र लेखन में रूचि रखती है।

मैत्रेयी स्नातक की विद्यार्थी थी तभी अपनी माँ से कह देती है माँ मेरी शादी कर दो क्योंकि वह पुरुषों की कुदृष्टि एवं औचक हमलों से परेशान है। माँ तुम खफा क्यों होती है? मेरी स्वाभाविक इच्छाओं को कठोर उपवास में मत बदलों। मैं अपनी इन्द्रियों को कसते कसते दूसरे की हवस का शिकार हुए जाती हूँ।"[13] कस्तूरी पति की मृत्यु पर नहीं रोई। पति के मृत्युपर्यन्त स्वसुर जी खेती अपने नाम करवाने अदालत पहुँचे और जग हंसाई हुई। किन्तु कस्तूरी ने धैर्य नहीं छोडा एवं समाज सेवा व बच्ची की सेवा में ही जीवन अर्पित कर दिया।

मैत्रेयी की सृजनशीलता को स्त्रीवादी ही नहीं पूर्णतः समाजवादी कथाकार कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी। मैत्रेयी के सामने विपत्तियों की तरह मनुवादी विचारधाराएँ तथा पुरुषत्व की धारणा हावी होने लगी। हमारा समाज पुरुषवादी है। पुरुष के बिना कस्तूरी रिश्तों के लिए जिस द्वार पर जाती है वहां पिता का नाम पहले लिया जाता है। कुण्डली मिलान की जगह मार्कशीट मिलान होता। दहेज की गन्ध पाते ही उठ खड़ी होती है। अन्त में दुखी होकर खुद कह देती है कि वह अपने किसी संगी साथी (प्रेमी) से शादी कर ले "मैं जात-पात को नहीं मानती। तेरी शादी को लेकर आखिरी

बात है मेरी।"[14] मैत्रेयी 'मगंलसूत्र को 'घटमल्ला' मानती है। मैत्रेयी का विवाह, गृहस्थी इन सब पर से विश्वास उठ चुका था। वह पुरुषवादी सत्ता से पीड़ित होकर माँ से कह देती है कि माता जी मैं विधवा कब हूँगी। प्रस्तुत तर्क लेखिका की वैचारिकता में अन्तर्विरोध की स्थिति को प्रकट करता है। आगे चलकर बिछिया और करवाचौथ के व्रत को तिलांजलि देने वाली लेखिका अपनी मित्र इल्मा के बुर्के को मुस्लिम संस्कृति का हिस्सा मानकर वैध ठहराती है। इस प्रकार परिवेश में धार्मिक रूढ़ियों परम्पराओ के प्रति आसक्ति से परे रहती है।

सुशीला टाकभौरे की माँ ने लड़कों से बचकर महाविद्यालय अध्ययन करने का सुझाव दिया। बचपन से पुरुषवादी शिकंजों में फंसी हुई मछली की तरह तडफहाहट की जिन्दगी जीने पर दलित नारी को पीहर के बाद पति घर पर भी यातनाओं की शिकार होना पड़ा। अनमेल विवाह, ननद, सास के अत्याचारों व क्रूरता को सहना पड़ा। "शिकंजे का दर्द' के माध्यम से दलित नारी की व्यथा को कथित समाज के ठेकेदार समझे जाने वाले पुरूष वर्ग अनीति ही कहना सत्य प्रतीत होता है। गाँव की पिछवाड़ा स्टेशन के दूसरी तरफ रहने की जगह थी। "ऊँच-नीच जातिगत भेद-भाव की भावना सब तरफ व्याप्त थी। तब गाँव में बहुत छुआछूत थी। अछूत भंगी हरिजनों के घर गाँव के बाहर रहते थे। हिन्दू महाजनों की बस्ती से दूर कच्चे खफरैल घर।"[15] सुशीला ने पुरुषवादी सोच को यहाँ प्रस्तुत किया है कि स्त्री लिंग के प्रति होने वाला भेद-भाव तो यहाँ भी विद्यमान है जो कि स्त्री को स्त्रीत्व प्रदान करने में अधूरा प्रतीत होता है। लेखिका ने हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख व ईसाई धर्म में से सिक्ख धर्म की चर्चा की है जिससे हमारा अस्तित्व बना है। "एक दाह संस्कार के तेरहवें दिन पूजा और गुरू पाठ व गुरू प्रसाद करते हैं। वाल्मीकियों के गुरुद्वारे, उत्तर भारत, मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र में बहुत है। "सुशीला ने समाज को कोसा है तथा कर्महीनता की आलोचना की है। तथा आगे बढ़ने के लिए विद्रोह या आन्दोलन करने की चर्चा की है। जातिगत वैमनस्य को लेकर पर्याप्त लिखा है। मनुवादी जाति व्यवस्था ने लेखिका को पर्याप्त दंश दिए। जातिगत समीकरणों को तोड़ने के लिए लेखिका ने विद्रोही स्वर अपनाया है। इस प्रकार किरण बेदी, पूर्णिमा गुप्ता, अजीत कौर, अमृता कौर, अमृता प्रीतम, प्रकाशवती पाल, नालिनी जमीला, बेनजीर भुट्टो, कल्पना शास्त्री, शांताबाई काले, बेबी हाल्दार आदि महिला आत्मकथाकारों ने पुरुषवादी स्त्री मानसिकता की आत्मकथाओं के माध्यम से खुली सहज सरल अभिव्यक्ति प्रस्तुत की है।

संदर्भ सूची

1. कुसुम बंसल: जो कहा नहीं गया है पृ. 15
2. डॉ. सरजू प्रसाद मिश्र हिन्दी तेखिकाओं की आत्मकथा पृ. 48
3. चन्द्र किरण सोनरेक्साः पिंजरे की मैना पृ. 69
4. वही पृ. 69
5. कृष्णा अग्निहोत्री: लगता नहीं दिल मेरा पृ. 28
6. वही पृ. 29
7. वही पृ. 41
8. मन्नू भण्डारी: एक कहानी यह भी है पृ. - 18
9. प्रभा खेतान: अन्या से अनन्या पृ.-14
10. वही पृ. -195
11. वही पृ.-189
12. मैत्रेयी पुष्पा: कस्तूरी कुण्डल बसै पृ. -61
13. वही पृ. -59
14. वही पृ.-43
15. सुशीला टाकभौरे: शिकंजे का दर्द पृ. - 9